RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015–17

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 74 अंक : 8
सृष्टि संवत् 1960853118
21 मई, 2017
दयानन्दब्द 193
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726

जालन्धर

POSTAGE PRE-PAID MAIL BUSINESS CENTRE JALANDHAR CITY R.M.S.

वर्ष–74, अंक : 8, 18–21 मई 2017 तदनुसार 8 ज्येष्ठ सम्वत् 2074 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

पवित्र बुद्धिवाले का मन अडोल होता है

-ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी।।
-ऋ० ५।४४।९

शब्दार्थ-समुद्रम् = समुद्र वा अन्तरिक्ष **आसाम्** = इन प्रजाओं का **अग्रिमा** = अगुआ **अव+तस्थे** = होता है। इनका **सवनम्** = सवन, यज्ञ **न** = नहीं **रिष्यति** = नष्ट होता, **यस्मिन्** = जिसमें **आयता** = वृद्धि है और **यत्र** = जहाँ **पूतबन्धनी**= पवित्रता को धारण करने वाली **मति :** = बुद्धि **विद्यते** = रहती है, **क्रवणस्य** = क्रियाशील मनुष्य का **अत्र** = उस विषय में **हार्दि** = हृदय का भाव न = नहीं **रेजते** = काँपता, डोलता।

व्याख्या-इस मृत्तिकायमयी भूमि से जलमय सागर बहुत विशाल है। सैकड़ों नदियाँ इसमें पड़ती हैं, किन्तु यह उछलता नहीं। इसी प्रकार जो मनुष्य इस दृष्टान्त को सामने रखता है उसका-**न रिष्यति सवनम्**-यज्ञ नष्ट नहीं होता, पुरुषार्थ अकारथ नहीं जाता। उसके सामने वृद्धि-ही-वृद्धि है। उसे किसी प्रकार की हानि की सम्भावना ही प्रतीत नहीं होती। यह सब वहाँ सम्भव है-**'यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी'**-जिसमें पवित्रता से बँधी हुई बुद्धि है। तात्पर्य यह कि जो मनुष्य चाहता है कि उसका उद्योग विफल न हो, उसकी क्रियाएँ सफल हों, उसे सबसे पहले बुद्धि को व्यवसायात्मिका= निश्चयात्मिका बनाने के लिए उसे पवित्र पदार्थ से बाँधना होगा। उच्छृङ्खल या अपवित्र से सम्बन्ध रखने वाली बुद्धि चञ्चल होती है, वह किसी विषय का दृढ़निश्चय नहीं कर पाती। बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है, जैसा कि मनुजी कहते हैं-**बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति**-बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है। महाभारत में कहा है-**नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते** [गीता, ४।३८] = ज्ञान के समान इस संसार में कोई वस्तु पवित्र नहीं, अत: मनुष्य को लगातार पवित्र ज्ञान के सञ्चय में लगा रहना चाहिए।

ज्ञानार्जन के जितने साधन हैं उन सबसे लाभ उठाना चाहिए। उनमें पवित्रता के अभिलाषी के लिए वेद-शास्त्र सबसे मुख्य साधन है, अत: पवित्रता के अभिलाषी को वेद-शास्त्र का अभ्यास अवश्य और निरन्तर करना चाहिए। ज्ञान से बुद्धि को निर्मल करके जो कार्यक्षेत्र में आता है-**'अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते'**-इस संसार में उस क्रियाशील के हार्दिक भाव नहीं काँपते, अडोल रहते हैं। दुर्बलता का मूल हृदय में होता है। कार्यारम्भ में वा कार्य में किसी समय जब दिल दहल जाए तो कार्य बीच में ही रह जाता है। किन्तु जिसने पवित्र बुद्धि से पहले ही कार्यसाधकों, बाधकों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसका चित्त चञ्चल नहीं होता। परलोक की बात जाने दो। संसार-व्यवहार में भी सफलता प्राप्त करने के लिए बुद्धि की नितान्त आवश्यकता होती है, अत: बुद्धि की शुद्धि में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सह:।।
-ऋ० ५।४४।६

शब्दार्थ-उन लोगों से **यादृग्+एव** = जैसा ही **ददृशे** = देखा जाता है **तादृग्** = वैसा **उच्यते** = कहा जाता है, जो **ज्रय:** = वेगवान् मनुष्य **अप्सु** = कर्मों में **सिध्रया** = सरल, मङ्गलमयी **छायया** = छाया के साथ **अस्मभ्यम्** = हमारे लिए **महीम्** = बहुत बड़ी **उरुषाम्** = अति आदर करने वाली वाणी तथा **उरु** = विशाल **बृहत्** = महान् **सुवीरम्** = शोभन वीरों वाला तथा **अनपच्युतम्** = क्षीण न होने वाला **सह:** = बल आ **+सं+दधिरे** = धारण करते हैं।

व्याख्या-विद्वान् धार्मिक सज्जनों की शक्ति मानो छाया बनकर उसके कर्मों में विराजती है-**'सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा..... सह:'**-वे मङ्गलमयी छाया के साथ, कर्मों में शक्ति को धारण करते हैं। ऐसे महापुरुषों के कर्मों में बल होता है, उनके वचन में शक्ति होती है। **अमोघास्य वाग्भवति** = इसकी वाणी अवश्य सफल होती है। जिनकी वाणी में इतना बल हो, उनकी क्रिया में आकर्षण-शक्ति का क्या कहना? किन्तु इनके इस अवर्णनीय बल के साथ उनकी शान्तिदायिनी छाया=छवि भी होती है, अर्थात् इनकी प्रत्येक क्रिया पर शान्ति की, मंङ्गल की छाप होती है, क्योंकि इनकी वाणी तथा बल **'अस्मभ्यम्'** हमारे लिए होता है। स्वार्थ छोड़कर, लोकोपकार की भावना से प्रेरित होकर जो अपना सारा बल, पराक्रम, तन,मन, धन, जनसेवा में अर्पण कर देते हैं, उनके कर्म लोकहित की भावना से प्रेरित होकर प्रवृत्त होते हैं, अत: वे **'सिध्रया छायया'** मङ्गलमयी छाया साथ लिये होते हैं।

जो लोकहित में प्रवृत्त होते हैं, लोक भी उनका साथ देते हैं, अतएव उनका सह: बल **'उरु बृहत् सुवीरमनपच्युतम्'**-विशाल, महान, सुवीर और क्षीण न होने वाला होता है। दिन-दिन इनके साथियों की संख्या बढ़ती जाती है, अत: इनका बल उरु और विशाल होता है, उत्तम, श्रेष्ठ, सज्जन, वीर पुरुषों के सहयोग से वह सुवीर और अत एव **अनपच्युत** = क्षीण न होने वाला होता है। इसका मूल कारण यह है कि **'यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते'** = जैसा दीखता है, वैसा कहा जाता है। ये सत्य के धनी होते हैं, केवल सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास नहीं कर लेते, अपितु बात की तह तक पहुँचकर उसकी यथार्थता जानने का यत्न करते हैं। इतने अनुसन्धान पर जैसी प्रतीति होती है, वैसा कहते हैं। सत्य का स्वरूप भी सुझा दिया गया है। जो मनुष्य सत्य बोलना चाहे, उसे पहले सत्य का ज्ञान भी करना चाहिए। ज्ञान यदि सत्य नहीं तो वचन कैसे सत्य होंगे ? सत्य बहुत बड़ा बल है। **(स्वाध्याय संदोह से साभार)**

यज्ञ से स्वर्गिक आनंद

ले. -डॉ. अशोक आर्य १०४ शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी २०१०१० गाजियाबाद

जो व्यक्ति कृपण होता है, उसका समाज में बहिष्कार कर देना चाहिये ताकि उसमें भी दान की वृति पैदा की जा सके। उसके मस्तिष्क में इस बात को डालना आवश्यक है कि दान ही स्वर्ग का मार्ग है, अदान अथवा कृपणता से नरक का द्वार ही खुलता है। यह यज्ञीय वृत्ति ही है जिससे स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं। इस बात को यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का यह २६ वाँ मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट कर रहा है-

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवित: परमस्यां पृथिव्या: शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवित: परमस्यां पृथिव्या: शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवित: परमस्यां पृथिव्या: शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्।। यजु. १.26।।

इस मन्त्र में दो बातों पर प्रकाश डाला गया है:

१. यज्ञ करते हुए अदानी का बहिष्कार करो-इस मन्त्र के द्वारा परम पिता परमात्मा प्राणी मात्र को उपदेश करते हुए कहते हैं कि इस संसार के जितने भी यज्ञ हैं, वह सब के सब दान का ही परिणाम होते हैं। बिना दान के कोई यज्ञ सम्पन्न हो ही नहीं सकता। दान से ही यज्ञ सम्भव होता है। वास्तव में यज्ञ का अर्थ ही दान है। यज्ञ का अर्थ ही परोपकार है। हम यज्ञ-हवन में जो कुछ भी डालते हैं, वह सब अपने हित के अतिरिक्त दूसरों का उपकार करने के लिए भी होता है तथा यज्ञ में डाला पदार्थ अग्नि अपने पास न रख कर, इसे हजारों गुणा शक्ति देकर, हजारों गुणा बढ़ाकर या यूं कहें कि इस में कुछ और जोड़ कर वायु-मण्डल को दान कर देता है तथा फ़िर वायु इसे संसार के लोगों का उपकार करने के लिए, शुद्ध; पौष्टिक वायु के माध्यम से सब प्राणियों में बांट देता है, प्राणियों को दान कर देता है। इस सब से स्पष्ट होता है कि यज्ञीय व्यक्ति सदा दान की भावना से ओत-प्रोत होता है। उस में जन-कल्याण की भावना होती है। वह बांट कर खाना ही पसन्द करता है। दूसरों को अपने में ही देखता है।

मन्त्र के इस भाग के माध्यम से यह सन्देश दिया गया है कि दानशील व्यक्ति सदा यज्ञीय होता है। यह स्वयं ही दानशील नहीं होता बल्कि यह दूसरों को भी दान की भावना से ओत-प्रोत करता है। अदानी की कृपणता की भावना को, आदत को बदल कर, उसे दानशील बनाया जावे। इसके लिए उसे समझाया जावेगा कि दान का क्या महत्व है? दान क्यों करना चाहिये आदि। जब उसे यह सब समझ आ जावेगा तो वह भी यज्ञीय बनने के लिए दान करने को आगे आवेगा। हम सत्संग करते हुए सदा यह प्रार्थना करते हैं कि हम सुमनस्य बनें। इतना ही नहीं हम यह भी प्रार्थना करते हैं कि हमारे सब व्यक्ति, सब लोग, सब परिजन, सब मित्र आदि भी दान करने वाले हों। अथर्ववेद में भी कहा है कि "दानकामश्व नो भुवत" यह सूक्ति भी यह ही उपदेश कर रही है कि हमारे सम्पर्क के सब लोग दान की भावना वाले हों, यज्ञीय हों। यह बात ही यजुर्वेद कह रहा है कि सब किसी के दबाव में नहीं बल्कि स्वेच्छा से दान देने वाले हों, दान देने में उत्साहित हों अर्थात् बड़े उत्साह से दान देते हों, दिल खोल कर दान देते हों। इस प्रकार मन्त्र का यह खण्ड कहता है कि हम दानशील बनें तथा जो अदानी हैं, उन्हें भी हम दानशील बनाने का प्रयास करें।

प्रभु आगे उपदेश कर रहे हैं कि जो लोग दानशील नहीं हैं, जिन में दान की किंचित भी भावना नहीं है। जो अति कृपण हैं, कंजूस हैं, दान देते हुए जिन के हृदय में कष्ट होता है, ऐसे जीव को प्रभु यज्ञ का अधिकार नहीं देते और कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति को कोई भी भद्र व्यक्ति किसी भी सामाजिक कार्यक्रम में आमन्त्रित न करे तथा समाजिक रूप से उसका बहिष्कार करे। किसी भी रूप में उसे सामाजिक कार्यों में भाग लेने की अनुमति न दी जावे। यह बहिष्कार ही, जिससे वह अपने आप को अपमानित सा अनुभव करेगा तथा बाध्य हो कर, इस अपमान से बचने के लिए वह अदान की आदत को छोड़ कर दान करने वाला बन जावेगा।

मन्त्र अपने उपदेश को आगे बढ़ाते हुए कह रहा है कि इस प्रकार सामाजिक भय से जब वह सत्संग को स्वीकार करने को तैयार हो जाता है तो इससे सत्संग के माध्यम से वेद की वाणियों का, वेद के उपदेशों का यह सत्संग स्थान बन जाता है। सत्संग के माध्यम से वेद के उपदेशों का प्रचार होने लगता है। इस के साथ ही जब बहिष्कार का भय उस कंजूस के सामने आवेगा तो भयभीत होकर वह सत्संग में भाग लेने के लिए अपने आप को दानशील बनाने का यत्न करेगा। इससे वेद वाणियों का, वेद के उपदेशों का विस्तार हो जावेगा। यह सत्संग ही है, जहां वेद के उपदेशों का ज्ञान मिलता है। इस प्रकार हे जीव ! यह सत्संग तेरे लिए ज्ञान के प्रकाश की वर्षा करे।

इस प्रथम खण्ड के अन्त में जीव उस पिता से प्रार्थना करता है कि हे पिता ! हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हम सत्संग से, वेद के उपदेशों से कभी विमुख न हों। सदा वेदज्ञान के प्रकाश में ही रहें, इस की छत्रछाया में ही रहें। जो लोग कृपण हैं, प्रभु ! उन्हें भी दानशील बनने के लिए प्रेरित करें तथा उन्हें भी यज्ञ में जाने का, सत्संग में भाग लेने का अधिकार दें। उन्हें ज्ञान के इस उपदेश से दूर मत करें। यदि उन्हें इस उपदेश से दूर रखा गया तो वह अपनी कृपणता को कैसे बुरा समझेंगे तथा इससे कैसे बचेंगे ? इसलिए प्रभो उन्हें दानशील बनाने के लिए, उन्हें भी यज्ञीय बनाने के लिए, उन्हें भी सत्संग में जाने का अधिकारी बनावें।

२. हमारे शत्रु को भी सत्संग का अधिकार मिले-मन्त्र अपने दूसरे भाग में उपदेश कर रहा है कि जो न देने वाला है, दान न करने वाला है, ऐसा व्यक्ति स्वर्ग का अधिकारी न हो ऐसा व्यक्ति सुखों को प्राप्त न करे, वह कभी सुखी न हो। स्पष्ट है कि अदानी को, कृपण को, कंजूस को कभी स्वर्ग नहीं मिलता, वह कभी स्वर्ग का अधिकारी नहीं होता। ऐसा व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता। यह संसार उसके लिए नरक के समान होता है। दु:खों का घर होता है। वह कभी सुखी नहीं हो सकता। यज्ञ दान का पर्याय होता है, दान ही यज्ञ की चरम सीमा होती है। अर्थात् दानशील बनना ही यज्ञ की पूर्णता है। यज्ञ को दान-रुप भी कहा जाता है। यज्ञ से हमारा यह लोक तो सुधरता ही है, इसके साथ ही साथ हमारा परलोक भी सुधर जाता है। यज्ञ के ही कारण हम इस लोक के सुखों को भी पाते हैं और परलोक के सुख भी मिते हैं।

मन्त्र आगे उपदेश करते हुए कहा रहा है कि दानशील व्यक्ति भोगों में लिप्त नहीं होता, वह कभी भोगप्रवण नहीं होता। जब वह दान की भावना रखता है, वह अपना पूरा समय दूसरों की सहायता में, परोपकार के कार्यों में लगाते हैं। इस कारण उनके पास बेकार के कार्यों के लिए, भोगों के कार्यों के लिए समय ही नहीं रहता। इसलिए वह कभी भोगों की ओर जा ही नहीं सकते। जब वह भोगों में लिप्त नहीं होते तो उनके शरीर की शक्ति, जिसे सोम कहते हैं, जो कुछ सोम-कणों का परिणाम होती है, उनके यह सोमकण कभी नष्ट नहीं होते। यह सोमकण उनके शरीर में सुरक्षित रहते हैं। यह सोम कण ही ज्ञानाग्नि के लिए ईंधन का काम करते हैं। इस ज्ञानाग्नि रुपी ईंधन से जो ज्ञान की आग हमारे अन्दर जलती है, उस अग्नि से ज्ञान-रुपी जो सागर हमारे अन्दर ठाठें मार रहा है, वह कभी भी नहीं सूख पाता क्योंकि इस अग्नि के साथ हमारे अन्दर जो सोमकण होते हैं, वह इस सरोवर को ठण्डा रखते हैं। इसलिए हम इस बात को सदा स्मरण रखें, याद रखें और इस के प्रकाश में हम सदा देने वाले बने रहें, दानशील बने रहें।

मन्त्र कह रहा है कि तू सदा दानशील बना रह। तेरी वृति, तेरी आदत भोगवृति की न हो, तू भोगों में न फ़ंस सके। तेरे अन्दर सुरक्षित यह सोमकण ज्ञान से तेरे मस्तिष्क को, जिसे इस शरीर का द्युलोक माना जाता है, सदा भरा रहे। इसे कभी

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सम्पादकीय......

मातृ दिवस पर विचार करें

भारतीय संस्कृति में माता का स्थान बहुत ऊंचा है। माता को निर्माण करने वाली शक्ति कहा गया है। हमारी भारतीय संस्कृति में जन्म देने वाली माता के अलावा धरती एवं गौ को भी माता का स्थान दिया गया है। इन्हें भी हम धरती माता और गौ माता कहकर पुकारते हैं। एक हमारा देश ही ऐसा है जहाँ पर भारत माता और गौ माता कहा जाता है। जिस प्रकार जन्म देने वाली माता अपनी सन्तान का हमेशा हिता चाहती है उसी प्रकार धरती माता और गौ माता भी हमारा कल्याण करती हैं। इसी कारण वेद में कहा गया है कि माता भूमिपुत्रोऽहं पृथिव्या: वयं तुभ्यं बलिहृत स्याम: अर्थात् भूमि हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं। इसकी रक्षा के लिए हम स्वयं को बलिदान कर देंगे। इस प्रकार मनुष्य के लिए इस संसार में इन तीनों माताओं की रक्षा के लिए तैयार रहना चाहिए। जन्म देने वाली माता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी संतान में अच्छे गुणों का विकास करके उसे राष्ट्रभक्त, गौभक्त बनाएं। माता ही संतान के हृदय में सद्‌गुणों का बीज बो सकती है जिनके अंकुरित होने पर एक भव्य और सुन्दर समाज का निर्माण होता है। इसलिए माँ को शास्त्रों में माता निर्माता भवति कहा गया है क्योंकि एक माँ ही है जो निर्माण करने की कला जानती है। सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में महर्षि दयानन्द जी शतपथ ब्राह्मण का वचन उद्‌धृत करते हुए लिखते हैं कि- मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरूषो वेद। अर्थात् तीन उत्तम शिक्षक माता, पिता और आचार्य के द्वारा मनुष्य ज्ञानवान बनता है। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। इसीलिए मातृमान् अर्थात् प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान् धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे अर्थात् सन्तान के निर्माण का दायित्व गर्भाधान से ही शुरू हो जाता है। गर्भाधान से ही माता का दायित्व शुरू हो जाता है कि वह ऐसे संस्कार और विचारशक्ति अपनी सन्तान को दें जिससे वे शिवाजी, महाराणा प्रताप, भगत सिंह, लक्ष्मीबाई, दुर्गा जैसे बन सकें। जो राष्ट्र निर्माण की क्षमता रखते हों। जहां पर माता के द्वारा इस कर्त्तव्य की अवहेलना की जाती है वहीं पतन शुरू हो जाता है। आज बढ़ रहे वृद्धाश्रमों का एक कारण यह भी है कि बच्चों को वे संस्कार नहीं मिल रहे हैं जिन संस्कारों के द्वारा उसके जीवन का समुचित विकास हो। उसे अपने माता-पिता के प्रति कर्त्तव्यों का बोध हो।

मातृदिवस के अवसर पर माताओं एवं बच्चों को इस बात का बोध कराने की आवश्यकता है कि कौन-कौन अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। क्या माँ अपनी सन्तान के प्रति कर्त्तव्य का पालन कर रही है? अगर एक माँ अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अपनी सन्तान को सभ्य, संस्कारवान एवं सुशिक्षित बनाने का संकल्प लेकर उनके जीवन का निर्माण करेगी तो वही सभ्य और संस्कारवान संतानें प्रतिदिन मातृदिवस एवं पितृदिवस मनाएंगी। विचार का विषय यही है कि माता-पिता सन्तान के प्रति और सन्तान माता-पिता के प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझें और उन कर्त्तव्यों का पालन करे। साल में एक बार मातृदिवस मनाकर हम अपने कर्त्तव्य की पूर्ति नहीं कर सकते। हमारी संस्कृति में तो प्रतिदिन मातृदिवस मनाने की आज्ञा है अर्थात् प्रतिदिन सुबह उठकर माता-पिता के चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद लेकर उनकी आज्ञाओं का पालन करें। मातृदिवस मनाने का सही तात्पर्य यही है कि समाज में जो बुराईयां फैल रही हैं उन बुराईयों को दूर करने में माता-पिता और बच्चे अपना योगदान दें। आज एक तरफ जहां मातृ-पितृ दिवस पर लम्बे चौड़े भाषण दिए जाते हैं वहीं दूसरी ओर वृद्धाश्रम दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। बुजुर्ग अपने ही घर में अपने आपको असहाय महसूस कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में इन दिवसों के मनाने का क्या औचित्य रह जाता है इसका अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं। क्यों ऐसी परिस्थितियां आती हैं कि जिस घर में माता-पिता अपनी सन्तान को पाल-पोस कर बड़ा करते हैं समय आने पर वही घर उनके लिए बेगाना हो जाता है। कहीं न कहीं माता-पिता के द्वारा दिए गए संस्कारों में भी कमी रह गई है, उनसे भी उपेक्षा हो गई है जिसके कारण ये दिन आते हैं। समाज में फैल रही बुराईयों का एक मुख्य कारण यह भी है कि सन्तान का निर्माण करते समय माता-पिता अपने कर्त्तव्य का अच्छी तरह निर्वहन नहीं कर पाए हैं। पैसे की अन्धी दौड़ के कारण उन्होंने जीवन के अत्यधिक महत्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा कर दी है। जितनी-जितनी उपेक्षा जीवन के इस महत्वपूर्ण पहलू की होगी उतना-उतना समाज निम्न स्तर की ओर अग्रसर होगा। संस्कारित संतान को ही माता-पिता, समाज, राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का बोध होता है। इसलिए प्रत्येक माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपने दायित्व का अच्छी तरह निर्वहन करे ताकि संतान सभ्य और सुसंस्कृत बने।

वर्तमान में मातृ दिवस जिसे मदर्ज डे कहा जाता है उसे जिस ढंग से मनाया जाता है उसका कोई औचित्य नहीं है। मातृदिवस मनाते हुए आज हमें अपनी संस्कृति और सभ्यता को नहीं भूलना चाहिए। हमारी संस्कृति में प्रत्येक दिन मातृ-पितृ दिवस है। इसी कारण हमारी संस्कृति का गौरव गान विदेशी भी करते हैं। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम को कौन भूल सकता है जिन्होंने अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए राज-पाट को छोड़कर वनवास ग्रहण किया। श्रवण कुमार की मातृ-पितृ भक्ति को कौन भूल सकता है जिसने अपने अन्धे माता-पिता की इच्छा पूरी करने के लिए अपने आपको न्यौछावर कर दिया। ये है मातृ-पितृ दिवस मनाने की सार्थकता। इसलिए अगर इस दिवस को मनाने के साथ-साथ हमें अपने बच्चों को अच्छे संस्कारों एवं विचारों से युक्त करना है जिससे वे अपनी जन्मदात्री माँ के साथ-साथ, अपनी मातृभूमि एवं गौ माता के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सके।

-प्रेम भारद्वाज, संपादक एवं सभा महामन्त्री

आर्य समाज सृष्टिक्रम विज्ञान के अनुसार ईश्वर और वैदिक धर्म को मानता है

ले. -पं० उम्मेद सिंह विशारद वैदिक प्रचारक गढ़निवास मोहकमपुर देहरादून

ईश्वर की कृपा से संसार का कल्याण करने हेतु भारत भूमि में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जन्म हुआ। महाभारत काल के बाद भारत वर्ष की जनता सत्य ईश्वरीय ज्ञान, सत्य आध्यात्म ज्ञान, विज्ञान, सत्य सामाजिक ज्ञान के अभाव में घोर अन्धकार में भटक रही थी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सर्वप्रथम वेदों के रूढ़ी अर्थो को शुद्ध ईश्वर परक अर्थ किये तथा ईश्वरीय ज्ञान, सृष्टिकर्म विज्ञान का प्रचार किया तथा एक ऋत सत्य का संगठन आर्य समाज खोल कर, सदैव के लिये ज्ञान विज्ञान का मार्ग दर्शक केन्द्र खोला, यह बड़ा चमत्कार था, इस सृष्टि में सर्वोच्च बृहद कार्य था। संसार के बड़े-बड़े विद्वान विचारक इस सत्य के प्रचार में पीछे रह गये थे। आज हम संक्षेप में आर्य समाज की मान्यताओं के ऋत ज्ञान विज्ञान पर चर्चा करते हैं।

ईश्वर का वैज्ञानिक स्वरूप

ईश्वर में मतवादियों ने उसे मानव सरीखा कल्पित कर लिया है, ईश्वर को पुरूष जैसा मान लिया है। योग दर्शन में भी ईश्वर को क्लेश कर्म विपाकर्शयः अपरामृष्टः पुरूष विशेषः ईश्वर कहा है, परन्तु यह मानवत्वारोपण नहीं है, क्योंकि यहाँ लौकिक-भाषा का प्रयोग करते उसके अलौकिक रूप का वर्णन किया गया है यह कहा है कि पुरूष तो क्लेशादि से परामृष्ट होता है और वह ऐसा पुरूष है जो क्लेशादि से अपरामृष्टः है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह पुरूष है इसका अर्थ है वह पुरूष नहीं है। श्वेताश्वतर उपनिषद का वचन है कि उसके न हाथ है न पांव हैं, बिना हाथों के पकड़ता बिना पावों के गति करता है, उसके न आंख है न कान है, वह बिना आंखों के देखता, बिना कानों के सुनता है। वैदिक दृष्टि कोण यह है कि ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं, शक्ति है, परन्तु वह शक्ति प्रकृति की विद्युत आदि की तरह अचेतन शक्ति नहीं, ईश्वर चेतन-शक्ति हैं।

ईश्वर सिद्धि में अनेक वैज्ञानिक मुक्तियां है जैसे सृष्टि में सर्जनात्मक चैतन शक्ति का होना, सृष्टिक्रम का नियमबद्धता का होना, सृष्टि में विशालता का होना, सृष्टि में प्रयोजन अथवा उद्देश्य का होना, सृष्टि की विविधता में एक सूत्रता का होना, सृष्टि में विशालता का होना, अस्थायित्व में स्थायित्व का होना। ये सब लक्षण जड़ जगत, वनस्पति जगत तथा प्राणी जगत में सर्वथा पाये जाते है, जिनके आधार पर निश्चित रूप से कहा जा कसता है कि विश्व जगत चेतन शक्ति से चल रहा है।

ईश्वर के प्रति कुछ वैज्ञानिक तथ्य

सृष्टि में सर्जनात्मक चेतन शक्ति का होना-जड़ जगत में सर्वनात्मक चेतन शक्ति का होना-वनस्पति तथा वृक्ष जगत में सर्जनात्मक चेतन शक्ति का होना-सृष्टि में क्रम तथा नियमबद्धता का होना-जड़ जगत में क्रम तथा नियमबद्धता का होना-वनस्पति तथा वृक्ष जगत में क्रम तथा नियमबद्धता का होना-सृष्टि की विविधता में एक सूत्रता का होना-प्राणी जगत में एक सूत्रता का होना-सृष्टि में अस्थायित्व में स्थायित्व का होना।

ईश्वर की सत्ता में निरतिशयता का प्रमाण

विकास-सिद्धान्त के अनुसार हर वस्तु की छोटी से छोटी तथा बड़ी से बड़ी सीमा होनी चाहिए। प्रकृति में छोटे से छोटा परिमाण "परमाणु" का है, बड़े से बड़ा परिमाण "आकाश" अन्तराल का है। ज्ञान में व शक्ति में जो बड़े से बड़ा है वही ईश्वर हैं वह ईश्वर गुरूओं का गुरू है, ज्ञान आदि का स्रोत है, क्योंकि काल की कोई सीमा नहीं होती। काल से काल के पीछे-पीछे जाते हुए ज्ञान का जो आदि स्रोत है वही ईश्वर है। इस ब्रह्माण्ड की रचना इतनी विचित्र और विस्तृत तथा सुव्यवस्थित है कि साधारण मनुष्य की बुद्धि वहां तक नहीं पहुंच सकती है। सृष्टि के एक एक कण से लेकर विशाल सृष्टि रचना की विविधता का नियमानुसार संचालन कोई आपार शक्ति द्वारा संचालन हो रहा है, जो संचालन कर रहा है उसी का नाम ईश्वर हैं (वैदिक विचार धारा का वैज्ञानिक आधार लेखक डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ग्रन्थ से)।

वैदिक धर्म में ईश्वरीय विज्ञान की प्रमाणिकता

सृष्टि का संविधान-ईश्वर सृष्टि का रचयिता है और सम्पूर्ण प्राणी जगत व जड़ जगत के संचालन का संविधान भी बनाया है। सृष्टि एक राज्य है और वेद उसके संविधान है वेद विज्ञान के बिना सृष्टि के उद्देश्यों की व्यवस्था भंग हो जायेगी। वेद ईश्वरीय राज्य व्यवस्था के ग्रन्थ संविधान हैं। वेद विज्ञान के अनुसार सृष्टि क्रम चल रहा है।

निर्विवाद ग्रन्थ और मत वादित ग्रन्थ वेदों की उत्पत्ति का काल

एक अरब छयानवे करोड़ आठ लाख बावन हजार नौ सौ छिहत्तर वर्ष है-अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति से ही वेद ज्ञान ईश्वर द्वारा ऋषियों की आत्माओं में दिया गया और वह क्रमशः पीढ़ी दर पीढ़ी आगे-आगे महाभारत काल तक केवल वैदिक धर्म की ही मान्यता थी। महाभारत काल के पश्चात वैदिक विद्वानों के न होने से अनेक मत मतान्तरो की उत्पत्ति हुई और विभिन्न सम्प्रदायों को धर्म का नाम दे दिया गया।

1. जैसेः **वैदिक सत्य सनातन धर्म**-सृष्टि उत्पत्ति के प्रारम्भ में जो ईश्वर द्वारा ऋषियों की आत्मा में दिया गया था, वही सत्य और निर्विवाद और ईश्वरीय धर्म है जिससे सृष्टिक्रम संचालित हो रहा है वही सत्य और मान्यधर्म है। इसकी आयु लगभग पोने दो अरब वर्ष हो गयी है। इसके धर्म पुस्तक का नाम वेद है।

2. **सनातन धर्म**-महाभारत काल से कुछ वर्ष पूर्व तक केवल वैदिक सत्य सनातन धर्म की मान्यता थी, कालान्तर में वेद के ऋत ज्ञान के विद्वानों के न होने के कारण और वर्ण संकर्णता के कारण चतुर लोगों ने अपने अपने मत उत्पन्न करके वेदो की और वेद सम्मत ग्रन्थों की जगह पोराणिक सृष्टिक्रम विरूद्ध काल्पनिक ग्रन्थों की रचना करके उसका नाम सनातन धर्म रख दिया और जनता को वेदों के अर्थो के अनर्थ करके परोस दिये और भारत की जनता में भिन्न भिन्न मतों के प्रचलन करके एक विवाद खड़ा कर दिया जो अभी भी चल रहा है। सनातन धर्म की आयु लगभग साढ़े पाँच हजार वर्ष पुरानी है। सनातन धर्म के ग्रन्थों का नाम पुराण है इसके अन्दर बौद्ध जैन, सिख व अनेक मतमतान्तर आ गये है।

3. **पारसी धर्म**-के ग्रन्थ का नाम जिन्दावस्था है, और इसके रचयिता जरथुरथ्रजी है, जिसका काल ईसासे 700वर्ष पूर्व है। 3500वर्ष करीब इसकी आयु है।

4. **ईसाई धर्म**-के ग्रन्थ का नाम बाईबल है, इसके रचयिता इब्राहिम और ईशामसीह जी है इसकी अवस्था 2500वर्ष लगभग है।

5. **मुस्लिम धर्म**-के ग्रन्थ का नाम कुरान है, जिसके रचयिता हज़रत मोहम्मद जी है जिसकी आयु लगभग 1500 वर्ष है।

भारतीय दृष्टिकोण में वेद अनादि है, वैदिक विद्वानों ने सृष्टि प्रारम्भ से ही उत्पन्न माना है क्योंकि वेदों में कोई इतिहास नहीं है। क्योंकि इतिहास घटना के बाद बनता है। उक्त प्रमाणों से सिद्ध हुआ केवल वेद अनादि है जैसे सृष्टि की उत्पत्ति फिर प्रलय फिर उत्पत्ति अनादि है वैसे वेद भी अनादि है और वैदिक धर्म ही सृष्टिक्रम व विज्ञान की कसौटी पर सही उतरता है।

अर्थात् जो भी मानव सृष्टि क्रम व विज्ञान के अनुसार धर्म को मानते है वह आर्य समाज के अन्तर्गत आते है। महर्षि देवदयानन्द जी ने सृष्टिक्रम, विज्ञान सम्मत ज्ञान को प्रसारित हेतु वैज्ञानिक विचार धारा का आर्य समाज का गठन करके संसार का कल्याण किया है। अतः इस लेख द्वारा मानव जगत से निवेदन करता हूँ कि हम सभी को ईश्वर और धर्म तथा सामाजिक मान्यताओं को सृष्टिक्रम विज्ञान की कसौटी पर परख कर ही मानना और जानना चाहिए तभी चहूं ओर सुख शान्ति हो सकेगी।

संसार का उपकार कैसे हो सकता है ?

-ले० आचार्य रामसुफल शास्त्री, आर्य समाज सै०7 बी चण्डीगढ़

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने विषम परिस्थितियों में पदार्पण करके पतन के गर्त पर गिरे हुए, अविद्या-अन्धकार-जाति-भेद ऊँच-नीच तथा परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े समूचे समाज व राष्ट्र को समुन्नत बनाने के लिए पवित्रतम संस्था आर्य समाज को स्थापित करके हमारे देश व समाज एवं समस्त मानवता पर बहुत बड़ा उपकार किया है। वेद-शास्त्रों-उप-निषदों-मनुस्मृति आदि अनेक प्रमाणिक सद्ग्रन्थों के आधार पर सत्य सनातन-प्राचीनतम वैदिक धर्म की पुन: स्थापना की। भूले वेद मार्ग को फिर से हमें बताया।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सर्व कल्याणार्थ आर्य समाज के 10 नियमों की रचना की। जिसमें छठे नियम में महर्षि जी ने लिखा है कि "संसार का उपकार करना आर्य समाज (इस समाज) का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।" ऋषि के निर्देशानुसार आर्य समाज अर्थात् आर्यों को समूचे विश्व की कल्याण की भावना से जन उपकार के कार्य अवश्य करने चाहिए। जैसे कि ऋषि आदेश के अनुसार आर्य समाज जन कल्याण के परोपकारी कार्य कर भी रहा है।

महर्षि दयानन्द जी ने "वसुधैव कुटुम्बकम्" अर्थात् सम्पूर्ण संसार एक परिवार है की भावना से यह बात कही है। यदि इस बात को सभी लोग समझ जायें तो सुनिश्चित है कि विश्व का कल्याण सम्भव है। क्योंकि बिना शारीरिक उन्नति के कोई भी व्यक्ति आत्मिक उन्नति नहीं कर सकता। जब तक शारीरिक व आत्मिक उन्नति नहीं होगी तब तक सामाजिक उन्नति सम्भव नहीं है। इसलिए ऋषिवर देव दयानन्द जी महाराज ने सभी प्रकार की उन्नतियों का सबसे प्रमुख आधार शारीरिक उन्नति बताया है। कहावत भी है कि-"स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा का निवास होता है।" तभी तो चारों आश्रमों में से प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम (विद्यार्थी जीवन) में शारीरिक शक्ति बढ़ाने-बल-बुद्धि से परिपुष्ट होकर आत्मा के विकास का साधन शरीर को मजबूत बनाने का निर्देश दिया गया है। जो प्रात: काल शीघ्र निद्रा को त्यागकर बिस्तर से उठ जाते हैं और लगभग 1 घण्टा आसन-व्यायाम प्राणायाम-भ्रमण तेल मालिस आदि के द्वारा शरीर को परिपुष्ट बनाने के लिए श्रम करते हैं, वे निश्चय ही शारीरिक उन्नति कर लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों का शरीर पूर्ण स्वस्थ रहता है, मन बुद्धि भी ठीक रहते हैं और आत्मिक उन्नति के लिए पूर्ण रूप से साधन सम्पन्न हो जाते हैं। शारीरिक उन्नति से परिपूर्ण व्यक्ति संसार के सभी सुखों को प्राप्त कर सकते हैं। ठीक ही कहा गया है कि: पहला सुख निरोगी काया, फिर दूजे हो घर में माया।"

"दूसरा साधना है आत्मिक उन्नति"-वेद-शास्त्र-उपनिषद-मनुस्मृति गीता-रामायण-ऋषिकृत ग्रन्थों के पठन-पाठन व सन्ध्योपासना-यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा हम सब अपने-अपने आत्मा को उन्नत बना सकते हैं। आज लोगों के पास आत्मा के लिए ज्ञान की खुराक देने का समय ही नहीं है। जैसे पौष्टिक-बढ़िया भोजन से व्यक्ति की क्षुधा शान्त होती है और शरीर बलिष्ठ होता है, ऐसे ही ज्ञान की खुराक से आत्मा की तृप्ति होती है और आत्म बल बढ़ता है। आत्मिक उन्नति का मुख्य साधन ज्ञान ही है। अस्तु सद् ग्रन्थों के स्वाध्याय द्वारा प्रतिदिन आत्मा को ज्ञान की खुराक देनी चाहिए। "तीसरा है सामाजिक उन्नति।" आज वर्तमान समय में बड़ी बिडम्बना है कि लोग प्राय: सीधे सामाजिक उन्नति अर्थात् धन-सम्मान-शान और शोहरत के लिए बड़ी तेजगति से भाग रहे हैं। ऐसे व्यक्तियों के पास धन सम्पदा बहुत अधिक तादाद में हो सकती है, क्षणिक मान-सम्मान लोक दिखावा भी बहुत हो सकता है, पर सच्चा सुख, सच्ची शान्ति और आत्मिक आनन्द नहीं मिल सकता। जब हम शरीर व आत्मा से ठीक होंगे, शरीर हर सम्भव श्रम करने में सक्षम होगा और आत्मनिष्ठ होकर प्रत्येक कार्य को करने में आत्मोत्साह होगा, हमारा घर परिवार सभी सुख साधनों से सम्पन्न व सन्तुष्ट होगा तभी हम समाज सेवा अर्थात् सामाजिक उन्नति के लिए हर सम्भव प्रयास करते हुए कार्य कर पायेंगे।

इसलिए महर्षि दयानन्द जी महाराज ने संसार का उपकार करने के लिए तीनों उन्नतियों को मूल आधार एवं महत्वपूर्ण बताया है। बिना शारीरिक उन्नति के आत्मिक उन्नति नहीं हो सकती और बिना आत्मा की उन्नति के समाज की उन्नति नहीं हो सकती। उक्त तीनों उन्नतियों में जब तक हम सफल नहीं होते तब तक संसार का उपकार कर पाना सम्भव नहीं है। जो आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। अस्तु आइये महर्षि दयानन्द जी द्वारा रचित आर्य समाज के छठे नियम के-निर्देशानुसार पहले शरीर फिर आत्मा और अन्त में सामाजिक सन्तुलन ठीक बनाने का हर सम्भव प्रयास करें। संसार के उपकार के लिए तीनों का सन्तुलित व समुन्नत होना अति आवश्यक है। तभी संसार का निश्चित रूप से उपकार हो पायेगा जब क्रमश: शारीरिक-आत्मिक और सामाजिक तीनों प्रकार की उन्नति ठीक-ठीक ढंग से होंगी।

वीर सैनिकों की जय बोलो

-पं. नन्दलाल निर्भय पत्रकार, भजनोपदेशक आर्य सदन बहीन जनपद-पलवल (हरि०)

भारत के सैनिक भारत की, करते हैं पहरेदारी।
वीर सैनिकों की जय बोलो, भारत के सब नर-नारी।।
सर्दी गर्मी वर्षा में, सीमा पर पहरा देते हैं।
कितनी भी विपदा आए, वे खुश होकर सह लेते हैं।।
वैदिक मर्यादाओं को, बलशाली वीर सहेते हैं।
इसीलिए तो ये योद्धा जनता के बड़े चहेते हैं।।
सच्चे त्यागी तपधारी हैं, महाबली परहितकारी।
वीर सैनिकों की जय बोलो, भारत के सब नर नारी।।१।।
भारत के दुश्मन भारत पर, जब जब चढ़ कर आते हैं।
देव भूमि भारत में पापी, जब उत्पाद मचाते हैं।।
वेद सभ्यता संस्कृति की, भारी हँसी उड़ाते हैं।
भारत के ये प्यारे योद्धा, उनका वंश मिटाते हैं।।
भारत के गौरव रक्षण में, इनका योगदान भारी।
वीर सैनिकों की जय बोलो, भारत के सब नर नारी।।२।।
अगर वीर सैनिक ना होंगे, हम ना बचने पाएँगे।
दुष्ट विधर्मी, इस ऋषियों के, भारत को कब जाएँगे।।
भारत की प्यारी जनता पर, जुल्म रात-दिन ढाएँगे।
मन्दिर तुड़वाकर के मस्जिद, गिरिजाघर बनवाएँगे।।
कुरान शरीफ, बाइबल के फरमान यहाँ होंगे जारी।
वीर सैनिकों की जय बोलो, भारत के सब नर-नारी।।३।।
भारत के सेनानी जब, दुष्टों को धूल चटाते हैं।
भारत माँ की सेवा में, जब जीवन भेंट चढ़ाते हैं।।
देश द्रोही लोग, सैनिकों पर,. पत्थर बरसाते हैं।
भारत के कुछ गंदे नेता, उनका साथ निभाते हैं।।
वे सब भारत के दुश्मन हैं, जो करते हैं गद्दारी।
वीर सैनिकों की जय बोलो, भारत के सब नर-नारी।।४।।
वीर सैनिकों ! सुनो ध्यान से, अपना सीना तान बढ़ो।
राम, भरत, लक्ष्मण बन जाओ, जामवंत, हनुमान बढ़ो।।
कृष्ण, भीम, अर्जुन बन जाओ, विक्रम वीर महान् बढ़ो।
चन्द्रगुप्त के वंशज हो तुम, कर पूरी पहचान बढ़ो।।
"नन्दलाल" है साथ तुम्हारे, भारत की जनता सारी।
वीर सैनिकों की जय बोलो, भारत के सब नर-नारी।।५।।

मानव जीवन-मोक्ष की पाठशाला

ले. नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' 602 जी एच 53 सैक्टर 20, पंचकूला मो. 09467608686, 01724001895

जिस प्रकार किसी पाठशाला में दाखिला लेकर एक विद्यार्थी अपने निर्धारित पाठ्यक्रम को पढ़ता हुआ इस उद्देश्य से शिक्षा ग्रहण करता है कि वह उस कक्षा में उत्तीर्ण होकर अंतत: उस विद्यालय की अंतिम डिग्री को प्राप्त कर ले ताकि उसके उपरांत वह आगामी शिक्षा के लिए आगे किसी महाविद्यालय में दाखिला ले सके। ठीक उसी प्रकार मनुष्य के रूप में जन्म लेकर एक बालक मोक्ष की पाठशाला में दाखिला लेता है।

जैसे विद्यालय में दाखिला लेने से पूर्ण कुछ मूलभूत तैयारी अर्थात बस्ता किताबें साधन होने चाहिये ठीक उसी प्रकार मनुष्य के रूप में जन्म लेकर इस दुनियां की मोक्ष की पाठशाला में दाखिला केवल परमपिता परमेश्वर न्यायकर्ता द्वारा हमारे पूर्ण जन्मों के फलों के आधार पर एक अनमोल तन अनुपम साधन मनुष्य शरीर के रूप में दिया जाता है। बिना जन्म के मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए जन्म पुन: जन्म एक लम्बी कड़ी के रूप में लेने पड़ते हैं। जैसे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक-एक वर्ष में एक-एक कक्षा में प्रवेश लेकर स्वाध्याय करते हुए परीक्षा देकर परीक्षक द्वारा परीक्षा फल मिलने के उपरांत ही सीढ़ी दर सीढ़ी उत्तीर्ण होते हुए उच्च डिग्री हासिल होती है। ठीक उसी प्रकार इस विशाल मुक्ति विद्यालय का एक-एक जन्म कक्षाओं के रूप में मिलता है। यह जीवात्मा देही या रथी ईश्वर प्रदत्त सर्वोत्तम साधन मानव शरीर का उपयोग वा उपभोग अपने लक्ष्य की प्राप्ति अर्थात् मुमुक्षत्व के लिए करना चाहती है। अब प्रश्न उठता है कि हमें अगली कक्षा में पूर्व कक्षाओं का पढ़ा हुआ आधार मिलता है। ठीक उसी प्रकार ईश्वरीय न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत कर्मफल सिद्धांत में बाकि सभी एकत्रित किए हुए भौतिक सुख सुविधाओं के साधन पीछे छूट जाते हैं। लेकिन हमारे किए हुए कर्म संस्कार रूप में ठीक उसी प्रकार साथ जाते हैं जैसे पिछली कक्षाओं में पढ़ा हुआ ज्ञान और फिर जैसे हम अपने वांछित डिग्री को प्राप्त करते है वैसे ही मानव जीवन के उद्देश्य अर्थात् मोक्ष को भी प्राप्त कर सकते हैं। जीव, देही, रथी की नित्यता गीता के प्रसिद्ध श्लोक **नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक:** से स्पष्ट है अर्थात् यह जीवात्मा अजर अमर अविनाशी है जो ना मरता है, ना गलता है, ना जलता है। परन्तु गीता में योगेश्वर कृष्ण ने स्पष्ट कर दिया "**वासांसि जीर्णानी यथा विहाय**" यानि जीव चोला बदलता रहता है। जीर्ण शीर्ण होने पर जीव मानव चोले को बदल सकता है। यह साधन मनुष्य का शरीर जो अग्नि, जल, वायु, आकाश और पृथ्वी इन पांच तत्वों के संयोग से बना पुन: विभक्त होकर इन्हीं पांचों तत्वों में विलीन हो जाता है। साधन अर्थात् जीवात्मा का साधन अर्थात् योनि के तन से संयोग जन्म और वियोग का नाम ही तो मृत्यु है। साधक अर्थात् जीवात्मा का अजर अमर अविनाशी नित्य होना और साधन अर्थात् शरीर का मरणधर्मा अनित्य होना ही इसका मोक्ष की इस महान पाठशाला में अगली कक्षा में प्रवेश दिखलाता है।

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य अपने जीवन काल में किस प्रकार के कर्म करे कि वह अपने जीवन के लक्ष्य, उद्देश्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करके अपने आत्मा को उस सत्य चेतन आनन्दस्वरूप परमात्मा के आनन्द में निमग्न करके जन्म जाल के बंधन से लम्बी अवधि के लिए मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर सके। इसके लिए भी योगेश्वर कृष्ण ने '**यज्ञ दान तप: कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्**' अर्थात् यज्ञ दान तप आदि कर्म मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं इनको त्यागना नहीं चाहिए। इनके द्वारा ही अभ्यास करते करते मनुष्य में मोक्ष प्राप्ति की भावना उत्पन्न हो जाती है। वैसे भी गीता में योगेश्वर कृष्ण ने निष्काम भाव से किए गए परोपकार के यज्ञीय कार्यों को सर्वश्रेष्ठ कर्म की संज्ञा दी है। इस प्रकार मनुष्य जीवन में सांख्य या ज्ञान योग से सत्य ज्ञान प्राप्त कर और उस सत्य ज्ञान को जीवन में धारण करके उसी के अनुरूप कर्म करता हुआ कर्म योगी बनकर ईश्वर की प्रत्येक आज्ञा अर्थात् अन्तर्यामी ईश्वर के हर संदेश को सुनकर उसका यथावत पालन करता हुआ ईश्वर की भक्ति करके जीवन के उद्देश्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

पृष्ठ 2 का शेष-यज्ञ से स्वर्गिक आनंद

भी सूखने न दे। इस मस्तिष्क को ज्ञान के जल से तब ही भरा हुआ रखा जा सकता है, जब हम इस जल को कभी सूखने न दें। इस जल में निरन्तर जल आता रहे। यदि जल का, यदि ज्ञान का प्रवाह रुक गया तो इसके सूखने में कुछ भी देर नहीं लगेगी। इसलिए इस प्रवाह को बनाये रखने के लिए हम सोमकणों को सुरक्षित रखें तथा इनकी सहायता से अपने ज्ञान को निरन्तर बढ़ाते ही रहें। इस को बढ़ाने की, इसे बनाये रखने की जो एक मात्र विधि, प्रभु ने बताई है, वह है सत्संग। यह सत्संग ही है, जो इस तालाब को भरा हुआ रख सकता है। इसलिए तू सदा सत्संग में भाग ले, सत्संग को प्राप्त हो। वेद की वाणियों का स्वाध्याय कर, वेद का प्रकाश प्राप्त कर, जो सत्संग से ही सम्भव है। वेद की वाणियों से जो ज्ञान मिलता है, जो विद्या मिलती है, इसके प्रकाश से ही हमारे अन्दर ज्ञान की वर्षा होती है, ज्ञान का प्रकाश होता है।

मन्त्र आगे उपदेश कर रहा है कि हे जीव ! तू सदा यह प्रार्थना कर कि हे प्रभो ! हमारे ऊपर यह जो अनेक प्रकार के बन्धन लगे हुए हैं, तू हमें इन सब बन्धनों से मुक्त कर, सब पाश तोड दे। यथा द्वेष भावना, इस द्वेष भावना के कारण जिसे हम अपना प्रिय स्वीकार नहीं करते, ऐसे दुष्ट को भी आप सत्संग से कभी वंचित न करना। कितनी ऊंची भावना, कितने ऊंचे विचार इस मन्त्र के माध्यम से हमें मिल रहे हैं, कि जिसके वशीभूत हम अपने दुश्मन को भी तारने का यत्न कर रहे हैं तथा प्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं कि वह प्रभु ऐसे दुष्टों को भी कभी सत्संग से वंचित न करे। यदि सत्संग से ही वंचित कर दिया गया तो वह कभी अपने में सुधार नहीं कर पावेगा। इसलिए उसे सुधरने का पूरा अवसर दिया जावे, सत्संग में भाग लेने की अनुमति दी जावे। इस में होने वाले उपदेशों को सुनने का उसे भी अधिकारी बनाया जावे। इन उपदेशों से उसे भी वंचित न करियेगा प्रभु! हम तो चाहते हैं कि हमारे शत्रु भी इस सत्संग के उपदेशों से लाभान्वित हों। ऐसा सौभाग्य उन्हें भी समान रूप से मिलता रहे। यदि इस प्रकार के अवसर उन्हें मिलेंगे तो इन अवसरों का लाभ उठाते हुए वह भी इन सत्संगों में बरसने वाले ज्ञान के जल में स्नान करके निर्मल हो सकेंगे। जब वह इस सत्संग के उपदेश-रुपी जल में स्नान कर निर्मल हो जावेंगे तो वह हमारे लिए शत्रु नहीं रहेंगे बल्कि मित्र की श्रेणी में आ जावेंगे। जब वह हमारे मित्र बन हमारे साथ यज्ञ करने लगेंगे, इस के महत्व को समझेंगे तो उनमें भी दान की भावना जाग उठेगी तथा वह भी दानशील लोगों का अंग बन जावेंगे, दानशील बन जावेंगे।

'वैदिक विद्वान' के रूप में आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री सम्मानित

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी. ए. वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति ने महात्मा हंसराज जयन्ती के अवसर पर जयपुर (राजस्थान) में आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी को वैदिक विद्वान के रूप में सम्मानित किया। सम्मान रूप में उन्हें शाल, प्रशस्ति पत्र, तुलसी की पौध एवं 31 हज़ार रूपये की मानराशि प्रदान की।

वैदिक विद्वानों में दिल्ली से अकेले आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी को इस सम्मान से आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी. ए. वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति के यशस्वी प्रधान डॉ. पूनम सूरी जी ने विभूषित किया। विशाल प्रांगण में हजारों आर्यजनों की उपस्थिति तो थी ही हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी एवं पूर्व राज्यपाल श्री टी. एन. चतुर्वेदी जी भी इस भव्य समारोह में उपस्थित थे।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैदिक विद्वान एवं अध्यात्मपथ के संपादक आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी को यह सम्मान उनके विपुल लेखन एवं देश-विदेश में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए प्रदान किया गया।

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी की विलक्षण प्रतिभा, उद्भट् विद्वत्ता एवं वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार की उत्कट निष्ठा को पहचान कर उन्हें सम्मानित करने के लिए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी. ए. वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति के यशस्वी प्रधान डॉ. पूनम सूरी जी एवं समस्त पदाधिकारी धन्यवाद एवं बधाई के पात्र हैं।

निष्काम भाव से कर्मरत रहने का नाम ही योग है

-ले० विवेक प्रिय आर्य मथुरा, उत्तर प्रदेश

हम अपने बनाए मंदिरों को साफ-सुथरा रखते हैं, उनमें धूप-दीप जलाते हैं, उन्हें सुगंधित रखते हैं। लेकिन कैसा आश्चर्य है कि ईश्वर की बनायी "अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पुरयोध्या" अर्थात् आठ चक्र और नौ दरवाजों वाली अयोध्या नगरी में यानी अपने शरीर रूपी मानव मंदिर में हम शराब, मांस, अंडे, भांग, बीड़ी सिगरेट का धुआं सब कुछ डालते हैं। जीवन कला के अभ्यासी को आहार शुद्धि का विचार करते हुए यह भी ध्यान रखना है कि हमारी कमाई भी शुद्ध और सात्विक हो, उसमें कर्मचारियों का रक्त नहीं सना हो।

सामान्यता समझा जाता है कि योग का अर्थ अग्नि या सूर्य के समक्ष महीनों वर्षों के लिए तपना नहीं होता। क्योंकि यदि तपना ही होता तो मोक्ष का अधिकारी पतंगा होता है, जो दीपक पर अपने आपको स्वाहा कर देता है। न जल में वर्षों खड़े होने पर मोक्ष मिलता है, क्योंकि बगुला घंटों पानी में ध्यान मग्न खड़ा रहता है और मछली तो जल में ही उत्पन्न होती है तथा जीवन पर्यत जल में रहकर अंत में जल में समाधि लेती है। इसी प्रकार ठंडेश्वरी या मौनी बाबा का क्षणिक नाटक है। प्रदर्शन मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करने तथा कुछ कमाने का चोखा धंधा है। योग का वास्तविक अर्थ है कि अपने वर्णाश्रम के अनुसार निष्काम भाव से कर्मरत रहना, वासनाओं की अग्नि में इंद्रियों को तपाकर निर्विषय कर देना और जीवन संग्राम के समस्त दु:खों को प्रभु प्रसाद समझकर उनसे संपूर्ण पुरुषार्थ के साथ विशांक रूप में जूझते रहना। प्राय: समझा जाता है कि "लोकोयं कर्म बंधन:" अर्थात् कर्म लोक बंधन का कारण है। लेकिन योग इसके विपरीत हमें सिखाता है कि कर्म ही बंधन मुक्ति का साधन है। अब प्रश्न है कि कौन सा कर्म है जो योग बन गया है, यज्ञ बन गया है। कर्म में यह कौशल कि वह यज्ञ बन जाये, यही योग है और यही जीवन कला है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि "योग: कर्मसु कौशलम्" अर्थात् कर्म में कौशल उसे यज्ञमय में बना देता है, प्रभु से वियोग नहीं योग कराता है अथवा मिलता है। इस प्रकार ज्ञान पूर्वक किए गए कर्म जब यज्ञ का रूप लेते हैं तो वही उपासना बन जाते हैं।

ज्ञान, कर्म और उपासना का यह त्रिवेणी संगम मानव का मोक्ष तीर्थ बन जाता है। कानों से हम भद्र सुनें, आंखों से भद्र देखें, धरती को मधुरता से सींचने के लिए शहद जैसा मीठा और हितकारी भद्र वचन कहें। मस्तिष्क से भद्र चिंतन, हाथों से भद्र कर्म और पैरों से भद्र चलन करें तब होगा हमारा आत्म यज्ञ। इसी को वेद माता ने इसे षड् योग भी कहा है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इसे समत्व योग कहा है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन ! संसार के सारे दु:ख संग के कारण हैं। योग और कुछ नहीं है कर्म करते हुए सिद्धि-असिद्धि में समभाव बनाए रखना, परमात्मा के साथ युक्त रहना, अपने को उसी के हाथों से देना ही योग है। वहीं हमारे भीतर के शत्रु काम, क्रोध, लालच, लालसा, झूठ, बेईमानी, दुराचार आदि हैं। मनुष्य कितने ही आविष्कार क्यों न कर ले, कितना ही बड़ा साम्राज्य क्यों न खड़ा कर ले लेकिन जब तक उसके भीतर ये शत्रु बैठे हैं तब तक बाहर की जीत, जीत नहीं हार है। क्योंकि जितना ही वह लालच और लालसा, झूठ और बेईमानी से बाहर का सामान जुटाता जाएगा उतना ही उसका लालच, उसकी लालसा, उसकी बेईमानी, उसकी दूसरों का खून पीने की प्यास बढ़ती जाएगी। जीत तो तभी होगी जब जिस प्यास को बुझानें तुम निकले हो, वह प्यास बुझ जाएगी। क्या सिकंदर की प्यास बुझी ? क्या नेपोलियन की प्यास बुझी ? क्या हिटलर और मुसोलिनी की प्यास बुझी ? यह सब अपनी लालसा की प्यास में ही डूब गये। प्रश्न है कि क्या कोई ऐसा रास्ता है जिससे मनुष्य भीतर के इन शत्रुओं से जीता जा सके। इसका उत्तर भारत की संस्कृति के पास है। वह है योग दर्शन के रचयिता पतंजलि मुनि के पांच यम। अपने तथा मानव समाज के जीवन के भवन को वैदिक संस्कृति के उन पांच आधार स्तंभों पर खड़ा कर देना, जिनकी नींव पाताल तक तथा चोटी हिमालय के शिखर तक चली गई है, यह पांच यम हैं-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन्हीं को योग भी कहा गया है। योग का अर्थ अपने को संपूर्ण रुप से मानव-देव-ऋषि बनाना है और इसका साधन प्रभु के मंदिर मानव शरीर की एक-एक इंद्रिय को उपयोगी बनाना है।

वैदिक संस्कृति संरक्षण अभियान का शुभारम्भ

-पं० वेदप्रकाश शास्त्री, शास्त्री भवन, 4-E, कैलाशनगर, फाजिलका, पंजाब

वैदिक सभ्यता-संस्कृति का प्राचीन काल से ही अत्यन्त गौरवशाली इतिहास रहा है। वेद, उपवेद, वेदांग, दर्शन, उपनिषद्, स्मृति, व्याकरण, आयुर्वेद, रामायण, महाभारत आदि शास्त्र वैदिक संस्कृति के अमूल्य ग्रन्थ हैं। इतना होते हुए भी वर्तमान समय में पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के सम्मुख वैदिक संस्कृति ह्रासोन्मुख है। इन विषम परिस्थितियों में हम सभी का परम कर्त्तव्य हो जाता है कि इसकी रक्षा तथा प्रचार-प्रसार में वृद्धि हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहें।

इसी उद्देश्य से वैदिक शिक्षा परिषद् फाजिलका द्वारा "वैदिक संस्कृति संरक्षण अभियान" का शुभारम्भ 2 मई, 2017 से विभिन्न विद्यालयों में किया जा रहा है। इस अभिमान के संयोजक वेदप्रकाश शास्त्री ने बताया-वैदिक संस्कृति के प्रचारार्थ अग्रलिखित विषयों का चयन किया है-शिशुगीतम्, धर्मशास्त्रीय श्लोक गायन, वैदिक सरस्वती वन्दना, मौखिक गायत्री सुलेखन, वेदमन्त्रोच्चारण, ओंकार महिमागायन, ईशवन्दना, प्रभो ! त्वमेव सर्वम् महर्षि दयानन्द चित्रकला, कलात्मक गायत्री मन्त्र लेखन, वाल्मीकि रामायण श्लोक गायन, गीता श्लोक गायन, संस्कृत सुलेख, पथ संचलन गीतम्, पर्यावरणीय निबन्ध लेखन-वृक्ष लगाओ, वृक्ष बचाओ, पर्यावरणीय भाषण प्रतियोगिता, पत्रवाचन, सर्व-मंगल कामना, मातृभूमि वन्दना, सीमा के प्रहरी, गोमाता वन्दना, आरती हिन्दी की।

2 मई को वैदिक पर्यावरणीय महायज्ञ के साथ कार्यक्रम का शुभारम्भ सरकारी मॉडल सी. से. स्कूल कौड़ियावाली से होगा। जिसमें पर्यावरणीय निबन्ध लेखन-वृक्ष लगाओ, वृक्ष बचाओ, तथा भाषण प्रतियोगिता-विषय-1. रहिमन पानी राखिए पानी बिन सब सून 2. ध्वनि प्रदूषण का दबाव, घटती श्रवणशक्ति, बढ़ता तनाव 3. वायु प्रदूषण का ग़स-रुकती सांसें, घुटता दम 4. किसान कहे मिट्टी से-"उपज घटी, और बिगड़ गई क्यों तेरी काया।" बुझे मन से बोली-" भैया, मानव ने ही तो दूषित मुझे बनाया।।" सदृश विषयों पर आयोजित की जायगी।

भव्य आर्य महासम्मेलन

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वाधान में आगामी आर्य महासम्मेलन 5 नवम्बर 2017 दिन रविवार को नवांशहर में करने का निश्चय किया गया है। इस अवसर पर आर्य जगत के सन्यासी, उच्चकोटि के विद्वान् वक्ता एवं नेतागण पधारेंगे। कार्यक्रम की विस्तृत सूचना समय-समय पर आपको देते रहेंगे। इसलिए 5 नवम्बर 2017 की तिथि को कोई कार्यक्रम न रखकर पंजाब की सभी आर्य समाजें अधिक से अधिक संख्या में नवांशहर में पधारें।

प्रेम भारद्वाज महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

समाज में टूट रहे रिश्तों को जोड़ने का कार्य करे आर्य समाज: सुदर्शन शर्मा

आर्य समाज वेद मंदिर आर्य नगर जालन्धर के 39वें वार्षिक उत्सव पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी को स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित करते हुये वैदिक विद्वान श्री महावीर मुमुक्ष जी एवं सभा के उप प्रधान श्री सरदारी लाल जी। उनके साथ खड़े हैं आर्य समाज के कोषाध्यक्ष श्री अनिल आर्य जी, महामंत्री श्री वेद आर्य जी, प्रधान श्री सतपाल जी, श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट, सभा महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी, सभा कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी एवं दूसरे चित्र में आर्य जनता बैठी हुई।

आर्य समाज वेद मंदिर आर्य नगर जालन्धर का 39वां वार्षिक उत्सव 8 मई से 14 मई 2017 तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। 8 मई से 13 मई 2017 तक पारिवारिक वेद कथा सायं 7.00 बजे से 10.00 बजे तक विभिन्न परिवारों में हुई जिसमें पंडित संदीप आर्य पानीपत के भजन एवं आचार्य महावीर जी मुमुक्षु वैदिक प्रवक्ता मुरादाबाद के प्रवचन हुये। मुख्य कार्यक्रम 14 मई रविवार को प्रात: 8.00 बजे से 2.00 बजे तक हुआ जिसमें प्रात: 8.00 बजे से 9.30 बजे तक विश्व शान्ति महायज्ञ हुआ जिसके ब्रह्मा आचार्य महावीर जी मुमुक्षु और मुख्य यजमान श्री निर्मल आर्य जी थे। 9.45 बजे ध्वजारोहण श्री राज कुमार जी व ओम प्रकाश मोखा द्वारा किया गया। 11.00 बजे से 2.00 बजे तक आर्य महासम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता श्री सरदारी लाल जी आर्य उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने की। इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी, महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी, रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट एवं कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, श्री सुदेश कुमार जी सभा मंत्री विशेष रूप से पधारे।

अपने सम्बोधन में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने आर्य जनता को आह्वान किया कि वह नशे के विरूद्ध एकजुट होकर लड़े और समाज में टूट रहे रिश्तों को जोड़ने का कार्य करें। उन्होंने कहा कि आज का नौजवान नशे के पीछे भाग कर अपनी जिन्दगी बर्बाद कर रहा है इसलिये हमें जनता को जागरूक करना होगा। सभा प्रधान जी ने कहा कि माता ही अपनी सन्तान का भविष्य उज्जवल बना सकती है। अत: इस विश्व को श्रेष्ठ बनाने के लिए आवश्यकता है, एक सशक्त सुन्दर एवं पवित्र समाज जिससे उत्तम राष्ट्र बनता है और राष्ट्र से विश्व को उत्तम बनाने की कल्पना की जा सकती है। एक उत्तम समाज व्यक्तियों के समूह से ही बनना सम्भव है। ऐसे व्यक्ति जो सुसंस्कारित, चरित्रवान, धार्मिक तथा पवित्र हों। ऐसे व्यक्तियों का निर्माण माता, पिता और आचार्य करते हैं। सन्तान को प्रथम संस्कार एवं शिक्षा देने वाली माँ ही होती है। इसलिए माता को निर्माता कहा गया है और वह माँ एक नारी ही है। सन्तान के निर्माण में उसकी मुख्य भूमिका माँ ही बनाती है। अत: नारी को सुशिक्षिता, विदुषी, धार्मिक, सचरित्र होना अनिवार्य है तभी वह सुयोग्य नागरिक का निर्माण कर सकेगी। माँ के गर्भ में ही सन्तान को संस्कार मिलना आरम्भ होता है।

सभा महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी ने अपने सम्बोधन में कहा कि यह महर्षि दयानन्द की ही देन है जो आज नारी जागरूक हो रही है। उन्होंने कहा कि आज पंजाब में 12वीं की परीक्षा का परिणाम आया है और मुझे यह बताते हुये खुशी हो रही है कि पहले तीन स्थानों पर लड़कियों ने कब्जा किया है। उन्होंने कहा कि यदि नारी शिक्षित होगी तो समाज भी शिक्षित होगा और देश तरक्की करेगा।

हमारे ऋषियों व मनीषियों ने मनुष्य निर्माण को सर्वोपरि माना एवं वेदों में मनुष्य बनने का उपाय क्या है? सर्वांगीण प्रगति का मार्ग क्या है? किस प्रकार की शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास हो सकता है, कौन सी शिक्षा पद्धति हमारे देश में प्रचलित होनी चाहिए। इस विषय पर गम्भीर चिन्तन किया। स्वस्ति पन्था मनुचरेम मनुष्य कल्याण के मार्ग पर चले परन्तु सोचने का विषय तो यह है कि कल्याणकारी मार्ग कौन सा है? ज्योतिष्मत: पथो रक्ष धियाकृतान वेद ने इसका समाधान बताया कि प्रकाश के मार्ग पर व्यक्ति चले और अपनी बुद्धि से उसकी रक्षा करे। आने वाले पथिकों के लिए इस मार्ग को प्रशस्त करे। ज्ञान का मार्ग ही, अध्यात्म का मार्ग ही जीवन के कल्याण का मार्ग है, बुद्धि एवं तर्क से निर्मित मार्ग है। ज्ञान का मार्ग मित्रता का मार्ग है। मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षन्ताम् विश्व में सभी प्राणी मेरे दृष्टिकोण में मित्र हैं, उन्हें अपने ज्ञान के चक्षुओं से मित्र की दृष्टि से देखूं, कोई शत्रुता का भाव मेरे अन्दर न आए। सभा महामंत्री जी ने घोषणा की कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में 5 नवम्बर 2017 को नवांशहर में एक आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। जिसको सफल बनाने के लिये आर्य जनता अभी से तैयारियां शुरू कर दे।

सम्मेलन के अध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वरिष्ठ उपप्रधान श्री सरदारी लाल जी आर्य ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा कि हमें समाज में फैल रही बुराईयों से एकजुट होकर मुकाबला करना है। उन्होंने कहा कि आर्य समाज ने हमेशा समाज के निर्माण में अपना योगदान दिया है। आज भी समाज को नशे की बुरी लत से बचाने की आवश्यकता है और यह कार्य सिर्फ आर्य समाज ही कर सकता है।

अन्त में आर्य समाज के पदाधिकारियों ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी को स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित किया। वार्षिक उत्सव को सफल बनाने के लिये आर्य समाज के प्रधान श्री सतपाल जी, महामंत्री श्री वेद आर्य जी और कोषाध्यक्ष श्री अनिल आर्य जी एवं आर्य समाज के सभी कार्यकर्ताओं ने अनथक प्रयास किया। इस वार्षिक उत्सव पर जालन्धर की समस्त आर्य समाजों के पदाधिकारी एवं सदस्य एवं भारी संख्या में लोग पधारे हुए थे। सभी गणमान्य अतिथियों को स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया गया। आशीर्वाद एवं शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ और सभी ने ऋषि लंगर ग्रहण किया।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।